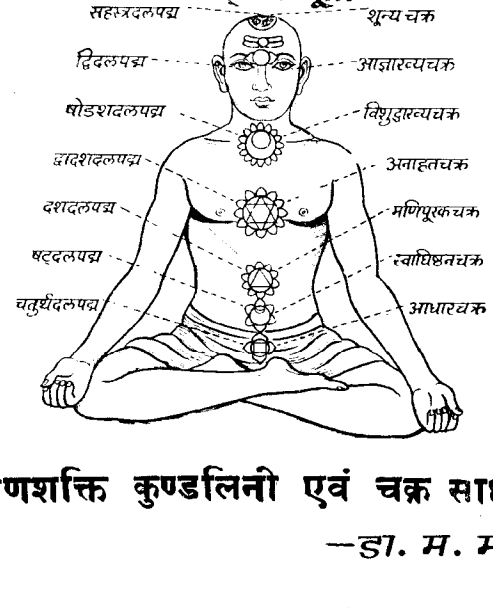

प्राणशक्ति कुण्डलिनी एवं चक्र साधना

—डा. म. म. ब्रह्ममित्र अवस्थी

योगशास्त्र की अधिकांश शाखाओं—हठयोग, लययोग एवं तन्त्रयोग आदि में कुण्डलिनी साधना की विस्तारपूर्वक चर्चा हुई है।[1] हठयोग के ग्रन्थों में इसे सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है और वहाँ इसे समस्त साधनाओं में श्रेष्ठ तथा मोक्ष द्वार की कुञ्जी कहा गया है। इस प्रकरण में कुण्डलिनी क्या है ? उसके जागरण का तात्पर्य क्या है ? तथा कुण्डलिनी जागरण के लिए साधना किस प्रकार की जाती है ? इन तीन प्रश्नों पर ही विचार किया जा रहा है।

कुण्डलिनी के लिए योगशास्त्र के विवध ग्रन्थों में प्रयोग किये गये नामों में कुण्डली और कुटिलाङ्गी नाम भी हैं, जिनसे विदित है कि इसका भौतिक स्वरूप वक्र अर्थात् टेढ़ा-मेढ़ा है, शायद इसीलिए इसके लिए कई स्थानों पर भुजङ्गी और सर्पिणी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।[2] कुछ स्थानों में इसके लिए तैजसी-शक्ति, जीव शक्ति और ईश्वरी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है,[3] जिससे हमें संकेत मिलता है कि यह एक तैजस शक्ति है, जो शक्ति जीव की स्वयं की अपनी शक्ति है, किन्हीं कारणों से शक्ति स्वभावतः उद्‌बुद्ध नहीं रहती, किन्तु इसे यदि जागृत किया जा सके तो साधक में अनन्त सामर्थ्य (ईश्वर भाव) आ जाता है।

कुण्डलिनी का जागरण क्योंकि अनन्त शक्तियों के साथ-साथ मोक्ष के द्वार तक पहुँचाने वाला है, अतः स्वाभाविक है कि इसके जागरण का उपाय, इसे जागृत करने वाली साधना बहुत सहज नहीं हो। इसी कारण इस साधना को सदा साधकों ने गुरु परम्परा से ही प्राप्त किया है, और गुरुजनों ने अधिकारी शिष्य को ही यह विद्या देनी चाही है। सम्भवतः यही कारण है कि इस साधना का सुस्पष्ट वर्णन किसी ग्रन्थ में नहीं दिया गया है।

---

१. हठ प्रदीपिका, घेरण्डसंहिता, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, तन्त्रसार, ज्ञानार्णवतन्त्र, शिव संहिता आदि। २. हठप्रदीपिका ३. १०४, योगकुण्डल्युपनिषद्। ३. वही ३. १०८-१०९।

www.jainelibrary.org

कुण्डलिनी के स्थान के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का वैमत्य नहीं है। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है कि मूलाधार चक्र से ऊपर और स्वाधिष्ठान चक्र के नीचे कुण्डलिनी का स्थान है। यह स्थान कन्द स्थान के अतिनिकट है। योनिस्थान के ठीक पीछे स्वयंभू लिङ्ग की स्थिति है, इस स्वयंभू लिङ्ग में ही सार्धत्रिवलयाकृति में अर्थात् स्वयंभू लिङ्ग को साढ़े तीन बार लपेटे हुए कुण्डलिनी स्थित रहती है।

स्मरणीय है कि अधुनिक शरीर विज्ञान अथवा चिकित्सा शास्त्र के विद्वानों को शरीर के इस भाग में ऐसे किसी स्थूल अवयव के होने की सूचना प्राप्त नहीं हुई है जिसका चित्र खींचा जा सके, अथवा किसी भी यंत्र के द्वारा उसे देखा और परखा जा सके। किन्तु साथ ही यह भी स्मरणीय है कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से सम्बद्ध शरीर विज्ञान यह निर्विवादरूप से स्वीकार करता है कि मानव के शरीर में चेतनाकेन्द्र यद्यपि मस्तिष्क अवश्य है तथापि चेतना से सम्बद्ध समस्त ज्ञान और चेष्टाओं का संचालन मस्तिष्क से ही न होकर अनेक बार सुषुम्ना के द्वारा भी होता है, और यह सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड (Spinal cord) के मध्य में स्थित है। साथ ही वहाँ यह भी स्वीकृत है कि पूर्ण चेतना युक्त मानव के भी मस्तिष्क और सुषुम्ना का केवल कुछ अंश ही क्रियाशील रहता है, सम्पूर्ण नहीं। जिस मनुष्य के मस्तिष्क और सुषुम्ना के चेतना केन्द्र अर्थात् समझने और क्रिया करने के नियामक केन्द्र का जितना अधिक अंश क्रियाशील होता है, वह मनुष्य उसी अनुपात में समझने और कुछ करने में सक्षम हो पाता है।

इसी प्रसंग में योगशास्त्र में वर्णित नाड़ी तन्त्र को भी स्मरण कर लेना आवश्यक होगा, जिसमें शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों के होने की चर्चा करने के बाद सुषुम्ना ईडा पिंगला कूहू कूर्म यशस्विनी यस्विनी आदि चौदह अथवा दस को प्रमुख बताकर उसमें भी प्रथम तीन अर्थात् सुषुम्ना ईडा और पिङ्गला को प्रधान कहा गया है। जिनमें अलग-अलग समय में स्थूल या सूक्ष्म प्राणों का संचार होता है। इनमें से ईडा और पिङ्गला क्रमशः बायें और दाहिने नासिका विवर से कन्द स्थान तक स्थित मानी जाती हैं। सुषुम्ना कन्द के मध्य से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के बीच से होती हुई भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र) तक जाती है, जहाँ उसका अन्तिम छोर मस्तिष्क से मिलता है। इस अन्तिम छोर को योग परम्परा की भाषा में ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। सुषुम्ना नाड़ी का दूसरा नाम ब्रह्मनाड़ी भी है। इस नाड़ी का प्रारम्भ यद्यपि कन्द (नाड़ी कन्द) के मध्य से है, किन्तु मूलाधार चक्र से पास एक ब्रह्मग्रन्थि स्वीकार की जाती है। इस ग्रन्थि का भेदन मूलाधर चक्र के जागरण के साथ होता है। इस नाड़ी में दो अन्य ग्रन्थियाँ भी योग परम्परा में स्वीकार की गयी हैं **विष्णुग्रन्थि** और **रुद्रग्रन्थि**। **विष्णुग्रन्थि** हृदय के पास मानी जाती है और **रुद्रग्रन्थि** भूमध्य से ऊपर। अनाहतचक्र के जागरण से **विष्णुग्रन्थि** का भेदन होता है और **आज्ञाचक्र** के जागरण से **रुद्रग्रन्थि** का भेदन। रुद्रग्रन्थि के भेदन के बाद योगी के लिए कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। वह **परमपद** प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में वह रुद्र विष्णु अथवा परब्रह्म के सदृश हो जाता है।

योगशास्त्र की परम्परा में एक बात यह भी निर्विवाद रूप से स्वीकृत है कि सामान्यरूप से प्राण **ईडा** या **पिङ्गला** नाड़ी में बारी-बारी से गतिशील रहते हैं; किन्तु योगी साधक उन्हें सुषुम्ना में साधना के द्वारा प्रवाहित कर लेता है। उसके अनन्तर ही अध्यात्म के क्षेत्र में उसका प्रवेश होता है, उसका चित्त एकाग्र हो पाता है। साधना के क्रम में प्राणायाम साधना के द्वारा ब्रह्मनाड़ी के मुख, जो मूलाधार चक्र के पास स्थित तथा कफ आदि अवरोधक तत्त्वों द्वारा रुंधा हुआ है, कफ आदि अवरोध हटने पर खुल जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, तब उसमें प्राणों का प्रवेश हो जाता है, **केवलकुम्भक** का यहीं से प्रारम्भ होता है, इस स्थित का ही वर्णन कहीं **ब्रह्मग्रन्थिभेदन** के नाम से और कहीं **कुण्डलिनी जागरण** के नाम से किया गया है।

योग परम्परा में प्रायः सभी सम्बद्ध ग्रन्थों में प्राप्त उपर्युक्त निर्विवाद वर्णन से निम्नलिखित तथ्य प्रगट होते हैं।

१. सुषुम्ना नाड़ी का आरम्भ कन्द स्थान के मध्य से है और आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्रार पद्म में मिलकर यह समाप्त होती है।

२. कन्द स्थान मूलाधार चक्र से लगभग दो तीन अंगुल ऊपर और नाभि के पास अथवा नाभि के नीचे है।

३. सुषुम्ना नाड़ी में कन्द स्थान से निकलने के बाद मूलाधार चक्र के पास पहली **ब्रह्मग्रन्थि**, हृदय (अनाहतचक्र) के पास द्वितीय **विष्णुग्रन्थि** तथा भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र) से ऊपर तृतीय रुद्रग्रन्थि है, इसके बाद ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना सहस्रार पद्म या मस्तिष्क में मिल जाती है।

४. सुषुम्ना नाड़ी चेतना का केन्द्र स्थान है अर्थात् समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में चेतना का संचार सुषुम्ना द्वारा ही होता है।

५. सुषुम्ना में ही मूलाधार से आरम्भ होकर आज्ञा चक्र तक (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) इन छह चक्रों की स्थिति है। ये सभी चक्र चेतना के विशिष्ट केन्द्र हैं, जो प्रायः जागृत या क्रियाशील नहीं रहते, साधना द्वारा इन्हें क्रियाशील (जागृत) किया जाता है।

६. प्राण अथवा प्राणशक्ति का सुषुम्ना में निर्बाध प्रवाह अर्थात् ऊपर आज्ञाचक्र से भी ऊपर सहस्रारपद्म तक जाना योग साधना की उच्च परिणति है।

७. किन्तु प्राण इस नाड़ी में सामान्यतया प्रवाहित नहीं हो पाते। ईडा अथवा पिङ्गला से कन्द स्थान में सुषुम्ना में प्रवेश तो करते हैं, किन्तु प्रथमग्रन्थि अर्थात् ब्रह्मग्रन्थि, जिसे प्रथम अवरोध कह सकते हैं, के कफ आदि से बन्द रहने के कारण आगे बढ़ नहीं पाते, वहीं रुक जाते हैं।

८. सुषुम्ना नाड़ी तीन खण्डों में विभाजित है : (१) कन्द से मूलाधार चक्र या ब्रह्मग्रंथि तक (२) ब्रह्मग्रन्थि से विष्णुग्रन्थि तक तथा (३) विष्णुग्रन्थि से रुद्रग्रन्थि तक।

९. प्राणायाम साधना द्वारा प्राण अपान का मिलन होने पर और उससे अग्नि के अत्यन्त तीव्र होने पर अवरोधक (अर्गल) तत्त्व हट जाते हैं, और उसके बाद उसमें प्राणों का प्रवाह प्रारम्भ होता है।

योग साधना के ग्रन्थों में एक बात और कही गयी है, प्राणायाम साधना के द्वारा सुषुम्ना में प्राणों का प्रवेश होने पर जब केवलकुम्भक प्रारम्भ होता है तब चित्त और प्राण क्रमशः ऊपर उठने लगते हैं, उस स्थिति में क्रमशः **पृथिवी धारणा, जल धारणा, आग्नेय धारणा, वायवी धारणा, आकाश धारणा** सम्पन्न की जाती है। इन धारणाओं में क्रमशः प्राण और चित्त **मूलाधार** आदि प्रत्येक चक्रों पर स्थित होते हैं। आज्ञा चक्र से ऊपर प्राण और चित्त के पहुँच कर स्थिर होने को **ध्यान** कहते हैं, और उससे भी ऊपर सहस्रार पद्म में प्राण और चित्त की स्थिति को **समाधि** कहते हैं। ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर स्थितियां हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलिनी के सम्बन्ध में भी यह तथ्य बिना किसी सन्देह के स्वीकार किया जाता है कि कुण्डलिनी स्वयंभू लिङ्ग में साढ़े तीन बार लिपट कर स्थित है। सुषुम्ना का मुख और इसका मुख पास पास है, अथवा सुषुम्ना का मुख इसके मुख में बन्द है। साधना के द्वारा सुषुम्ना का मुख खुल जाने पर कुण्डलिनी उसमें प्रवेश कर जाती है।

इन उपर्युक्त कथनों में दोनों में ही पूर्णतया समानता है, मानों दोनों कथनों में भाषा भेद या शब्दों के भेद से एक ही बात कही गयी है। उदाहरणार्थ—

१. कन्द स्थान से मूलाधार (ब्रह्मग्रन्थि) चक्र तक सुषुम्ना का प्रथम अंश है जिसमें प्राण प्रतिश्वास प्रश्वास में संचरित होते हैं, तथा कन्द और मूलाधार के बीच **स्वयंभूलिङ्ग** स्थित है, जिसमें कुण्डलिनी लिपटी हुई है।

२. सुषुम्ना का मुख खुलने पर कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रवेश करती है, तथा साधना द्वारा सुषुम्ना-मुख से कफ आदि अवरोधक पदार्थ हट जाने पर प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करते हैं।

३. केवलकुम्भक की साधना से क्रमशः ग्रन्थिभेदनपूर्वक प्राण सुषुम्ना में ऊपर को उठते हैं तथा एक बार सुषुम्ना में कुण्डलिनी का प्रवेश होने पर कुण्डलिनी सुषुम्ना में क्रमशः ऊपर की ओर उठती जाती है।

४. प्राण स्वयं शक्ति स्वरूप है तथा कुण्डलिनी शक्ति स्वरूप अथवा प्राणशक्ति रूप है।

५. सुषुम्ना में प्राणों के प्रवेश के अनन्तर **केवलकुम्भक** की सिद्धि हो जाना प्राण साधना की सर्वोतम सिद्धि है। इस साधना में उत्तरोत्तर पंचभूत धारणा (पृथिवीधारणा, जलधारणा, आग्नेयधारणा, वायवीधारणा, एवं आकाशधारणा) के सिद्ध होने पर प्राण आज्ञा चक्र में प्रवेश करते हैं। यहाँ ध्यान की सिद्धि होती है, और उसके बाद प्राणों का जो ऊर्ध्वगमन है, वह इस साधना की अन्तिम समाधि सिद्धि है। यहीं योगी को कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। जिसके बाद कुछ शेष नहीं रहता। दूसरी ओर कुण्डलिनी भी क्रमशः एक-एक चक्रों के क्रमशः जागरण और ग्रन्थिभेदन के साथ आज्ञाचक्र के बाद सहस्रार पद्म में पहुँचती है, जो इस क्रम में सर्वोच्च सिद्धि है। इससे मोक्ष का द्वार अनावृत हो जाता है। इसीलिए कुण्डलिनी सिद्धि को मोक्ष द्वार की कुंजी कहा है।

इस प्रकार स्वरूप, साधना क्रम, सिद्धि क्रम और परिणाम (फल) के पूर्ण साम्य को देखते हुए इस निर्णय पर पहुँचना अनुचित न होगा कि कुण्डलिनी जागरण और प्राणों का सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर उत्तरोत्तर ऊपर को पहुँचते हुए ब्रह्मरन्ध्र द्वारा ऊपर तक पहुँच जाना, जिसे **केवलकुम्भक** की सिद्धि कहते हैं, परस्पर भिन्न नहीं बल्कि अभिन्न हैं, एक हैं। इस एक ही स्थिति को दत्तात्रेय योगशास्त्र योगतत्त्वोपनिषद् आदि ग्रन्थों में **केवलकुम्भक** की सिद्धि के रूप में वर्णन किया है। इसके विपरीत तन्त्र से प्रभावित अथवा सिद्ध या नाथ परम्परा से प्रभावित ग्रन्थों में (जहाँ शिव को योग का आदि उपदेष्टा कहा गया है) इस स्थिति को ही **कुण्डलिनी जागरण** के रूप में वर्णित किया गया है। स्मरणीय है कि दत्तात्रेय योगशास्त्र और योगतत्त्वोपनिषद् आदि में भगवान विष्णु के अवतार दत्तात्रेय को दूसरे शब्दों में भगवान् विष्णु को योग के उपदेष्टा के रूप में निबद्ध किया गया है। जिन ग्रन्थों में **केवलकुम्भक** की साधना की विधि और क्रम वर्णित है, उनमें कुण्डलिनी जागरण की बात नहीं है। और जिनमें कुण्डलिनी जागरण की चर्चा हुई है उनमें **केवलकुम्भक** की चर्चा नहीं मिलती।

www.jainelibrary.org For Private & Personal Use Only

फलतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **प्राणशक्ति** और **कुण्डलिनी शक्ति** एक ही शक्ति के दो नाम हैं। कुण्डलिनी का जागरण और प्राणों का सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश और उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगमन परस्पर अभिन्न हैं। इनमें केवल शब्दभेद है, भाषाभेद है, वस्तुभेद अर्थात् साधना और सिद्धि में कोई भेद नहीं है।

यहाँ इस एक तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि प्राणशक्ति का अर्थ श्वास-प्रश्वास के अन्दर और बाहर प्रविष्ट होने वाली वायु नहीं है। प्राणशक्ति से निरन्तर सम्बद्ध होने के कारण इसे भी कभी-कभी प्राण कह लेते हैं, ये बाह्य प्राण हैं, जो प्राणशक्ति से भिन्न हैं। इनको ही यदि प्राण मानेंगे तो इन्हें बाहर निकालना कौन चाहेगा, क्योंकि कोई नहीं चाहता कि प्राण बाहर निकलें। यदि यह बाहरी श्वास-प्रश्वास ही प्राण होते, तब तो प्राण निकल जाने पर इन्हें ही भरकर और पुनः न निकलने देने के लिए कृत्रिम उपायों से मार्ग निरोध करके किसी को प्राणवान् अर्थात् जीवित किया जा सकता। किन्तु ऐसा नहीं है। इसका कारण है कि प्राणशक्ति और बाहरी वायु जिसे हम श्वास-प्रश्वास द्वारा अन्दर लेते हैं, परस्पर भिन्न हैं, दो चीजें हैं। एक नहीं हैं। इसीलिए प्राणों का, प्राणशक्ति के बाह्य अभिव्यक्तरूप का, विभाजन करते हुए स्थूल वायु अथवा स्थूल प्राणों का विभाजन 'प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान', इन पाँच नामों में किया जाता है, तथा इनके स्थानों और कार्यों का पृथक्-पृथक् रूप से वर्णन किया जाता है। इन पाँच स्थूल प्राणों के अतिरिक्त 'नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय' पाँच अन्य स्थूल प्राण भी हैं, किन्तु ये प्राण अपान की अपेक्षा सूक्ष्म है, अथवा इनकी क्रिया का बोध सर्वसामान्य को कम होता है। महत्त्व इन सभी का समान है, कोई इनमें प्रधान या अप्रधान नहीं है, कार्य सबके भिन्न-भिन्न हैं। इन दसों प्राणों में श्वास-प्रश्वास में आने-जाने वाला वायु क्योंकि अत्यन्त स्थूल है, अथवा यों कहें कि इसका बोध, इसकी गति का बोध, सबको निरन्तर होता रहता है, अतः प्राणशक्ति के रूप में इसे भी प्राण कह दिया गया है।

इस मूल **प्राण** को **प्राणशक्ति** अथवा **शक्ति** कह सकते हैं। इसे ही **कुण्डलिनी** के पर्यायवाची शब्दों में **शक्ति, जीवशक्ति** और **ईश्वरी** आदि नामों से स्मरण किया जाता है। यह प्राण ही चेतना का मूल आधार है। सम्पूर्ण बोध (ज्ञान ग्रहण) और क्रिया का संचालन इसके द्वारा ही होता है। इसकी महिमा का वर्णन करते हुए ही प्रश्न उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है 'तस्मिन् उत्क्रामति इतरे सर्व एव उत्क्रामन्ते' [प्रश्न २.४]।

इस प्राणशक्ति का, चेतना शक्ति का, मुख्य केन्द्र मस्तिष्क है। इसके उपकेन्द्र सुषुम्ना नाड़ी में हैं। सुषुम्ना नाड़ी के तीन खण्ड हैं। यदि मस्तिष्क को भी कार्य के आधार पर एक कहना चाहें तो चार खण्ड हैं (१) मस्तिष्क इसका सबसे प्रशस्त और प्रधान भाग है, इसे योगशास्त्र की भाषा में **सहस्रार पद्म** कहा जाता है। (२) उससे नीचे आज्ञाचक्र से अनाहत चक्र का अंश द्वितीय भाग है। इन दोनों के संयोग स्थल को रुद्रग्रन्थि कहते हैं। विद्युत तकनीक की भाषा में चाहें तो इसे एक फ्यूज कह सकते हैं। इस भाग के ऊपरी अंश से अवबोधक चेतना और प्रेरक चेतना का नियमन होता है जिसे आज्ञाचक्र कहते हैं। शरीर में यह स्थल भ्रूमध्य में माना गया है। इससे कुछ नीचे कण्ठ के पास विशुद्धचक्र है, जहाँ से अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान और क्रिया चेतना का नियमन होता है। यहाँ आकाश तत्त्व की प्रधानता है। आकाश के गुण शब्द की उत्पत्ति और उसके ग्रहण का नियमन केन्द्र यहीं पर है। उससे नीचे हृदय के पास सुषुम्ना के इस अंश का सबसे निचला भाग है। जिसे वायु का स्थान कहा जाता है। सम्पूर्ण स्पर्श चेतना एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंग प्रत्यंगों में कम्पन अथवा गति का नियमन यहाँ तक कि रक्त की गति का नियमन भी इसी केन्द्र से होता है।

(३) सुषुम्ना का तृतीय भाग अनाहत चक्र से मूलाधार चक्र तक है। यह भाग जहाँ द्वितीय भाग से मिलता है, उस सन्धि को विष्णुग्रन्थि के नाम से स्मरण किया जाता है। स्थूल तत्त्व अग्नि, जल और पृथिवी तत्त्वों के स्थान अर्थात् इन तत्त्वों से सम्बद्ध चेतना केन्द्र इसी भाग में हैं। सबसे नीचे गुदा के कुछ ऊपर **मूलाधार चक्र** पृथिवी स्थान है। उससे कुछ ऊपर योनि स्थान से पीछे पेडू के निकट स्वाधिष्ठान चक्र **जल स्थान** है तथा उससे भी ऊपर नाभि के निकट मणिपूर चक्र **अग्नि का स्थान** माना जाता है। गन्ध रस एवं रूप विषय बोध की चेतना का नियमन तथा मल विसर्जन, वीर्य धारण एवं विसर्जन तथा समस्त शरीर के धारण की क्रियाओं का नियमन इन चेतना केन्द्रों के द्वारा ही होता है। यह सुषुम्ना भाग जहाँ ऊपरी अर्थात् द्वितीय भाग से मिलता है, उस सन्धि को विष्णुग्रन्थि कहते हैं, यह ऊपर कह चुके हैं। इसका सबसे निचला भाग ब्रह्मग्रन्थि कहलाता है। यह भाग कफ आदि अवरोधक तत्त्वों से ढका हुआ है, अतः सुषुम्ना के चतुर्थ भाग से इसका निर्बाध सम्बन्ध नहीं बन पाता। इसके आवरण मल को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की साधनाओं की व्यवस्था योगशास्त्र में दी गयी है। इस मल के पूर्णतया हटने पर ब्रह्म नाड़ी के इस मुख के खुलने को ही ब्रह्मग्रन्थि भेदन या कुण्डलिनी का प्रथम उद्‌बोधन कहते हैं।

(४) सुषुम्ना नाड़ी का चतुर्थ भाग कन्द स्थान से मूलाधार चक्र के मध्य का भाग है। ब्रह्मग्रन्थि द्वारा यह भाग एक ओर मूलाधार चक्र के पास सुषुम्ना के तृतीय भाग से जुड़ता है और दूसरी ओर कन्द से जुड़ा है। शरीर की सभी नाड़ियाँ इसी कन्द स्थान पर आकर मिलती हैं और सुषुम्ना से प्राप्त चेतना के विषयबोधचेतना अथवा क्रियाचेतना को प्राप्त करके सम्पूर्ण शरीर में फैलती हैं और उसे क्रियाशील बनाती हैं। इस कन्द स्थान को विद्युत तकनीक की भाषा में ट्रांसफार्मर कह सकते हैं, ऐसा पावर हाउस कह सकते हैं जहाँ से विद्युत का उत्पादन तो नहीं किन्तु वितरण का कार्य होता है।

क्योंकि शरीर की समस्त ज्ञान अथवा क्रिया का नियमन यहीं से होता है। यहाँ से प्राप्त चेतना से, यहाँ से प्राप्त शक्ति से, शरीर भर में फैली हुई नाड़ियाँ उन अंगों को शक्ति अथवा क्रियाशीलता देती हैं, अतः सुषुम्ना के इस भाग को शक्ति, जीवशक्ति, ईश्वरी आदि नामों से स्मरण किया जाता है। क्योंकि यह भाग ही शरीर के समस्त भाग को चेतना अथवा जीवन के चिह्न देता है, इसलिए इस भाग के स्थूल आधार अंश को **स्वयंभूलिङ्ग** कहना ठीक ही है।

सुषुम्ना का यह भाग यद्यपि सुषुम्ना के इससे अव्यवहित पूर्वभाग अर्थात् तृतीय भाग से पूरी तरह जुड़ा नहीं है अर्थात् कफ आदि मलों के कारण अर्गलाबद्ध है, अवरुद्ध है, अतः अनन्त चेतना के स्रोत से प्रवाहित होने वाली चेतना शक्ति इस अंश में नहीं आ पाती और इसी कारण अन्य जुड़े हुए नाड़ी तन्त्र में और उसके द्वारा शरीर के समस्त ज्ञान-इन्द्रियों और कर्म-इन्द्रियों को सम्पूर्ण चेतनाशक्ति नहीं मिल पाती। फलतः मनुष्य (मनुष्य आदि सभी प्राणी) न सम्पूर्ण ज्ञान सम्पन्न होता है, और न सम्पूर्ण रूप से क्रियाशक्ति से सम्पन्न। वह अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान रहता है। ठीक वैसे ही जैसे मुख्य पावर हाउस के प्रधान तार से अपने तार के भली प्रकार न जुड़ने के कारण अथवा संयोजक तार (फ्यूज वायर) के क्षीण (पतले) होने के कारण हमें थोड़ी विद्युत शक्ति ही मिल पाती है। मुख्य पावर हाउस में जितनी शक्ति है, उतनी शक्ति का उपयोग हम नहीं कर पाते। यदि इन दोनों को सशक्त तार से जोड़ दिया जाता है, तो विद्युत का निर्बाध प्रवाह एक ओर से दूसरी ओर तक मुख्य केन्द्र से गौण केन्द्र तक समान रूप से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने लगता है। प्राणायाम द्वारा, ध्यान द्वारा अथवा कुण्डलिनी जागरण के लिए बताए गये अन्य उपायों द्वारा साधक सुषुम्ना के इस भाग को मुख्य भाग से जोड़ने का प्रयत्न करता है। इस साधना में, इस कार्य में, जब उसे सफलता मिल जाती है, तब वह अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है। इस सफलता को ही सीधी-सीधी लौकिक भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं, वह ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

इस स्थिति में पहुँचने पर क्योंकि उसकी सम्पूर्ण चेतना का प्रयोग होने लग गया अतः वह पूर्ण प्रकाशमय, पूर्ण ज्ञानमय हो जाता है, अविद्या की निवृत्ति हो जाती है, और क्योंकि अविद्या ही अस्मिता (अहंभाव) राग द्वेष अभिनिवेशरूपी क्लेशों का मूल है,[1] जिनके कारण यह संसार चक्र चलता है, अतः इसकी (अविद्या की) निवृत्ति से साधक संसार चक्र सहित अस्मिता आदि क्लेशों से छूट जाता है। दूसरे शब्दों में वह मुक्त हो जाता है।

इस प्राण शक्ति के अथवा कुण्डलिनी या जीव शक्ति के जागरण के कई उपाय हैं। कई प्रकार की साधना है। प्राणायाम साधनाएँ उनमें एक है। जिस प्रकार आतसी शीशे के द्वारा सूर्य के बिखरे हुए प्रकाश को एक स्थान पर केन्द्रित करके वहाँ ताप (अग्नि) उत्पन्न कर दिया जाता है, उसी प्रकार ध्यान द्वारा भी सामान्य रूप से अपने द्वारा प्रयुक्त होने वाली शक्ति को केन्द्रित करके ब्रह्मनाड़ी के मुख को उद्घाटित करते हुए प्राणशक्ति अर्थात् कुण्डलिनी को जागृत किया जा सकता है, और प्रधान चेतना शक्ति (अनन्त चेतना शक्ति) से जोड़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार लोक में प्रज्वलित गैस को भिन्न पदार्थ लोहे आदि पर डालकर उसे गरम करना, पिघलाना, जोड़ना आदि क्रियाएँ सम्पन्न कर ली जाती हैं, उसी प्रकार जिसने अपनी अनन्त चेतना शक्ति को जागृत कर लिया है, ऐसा सिद्ध गुरु अपनी शक्ति से दूसरे साधक (अधिकारी साधक) की प्राणशक्ति को मूल चेतना शक्ति, कुण्डलिनी को जागृत कर सकता है। इस क्रिया को ही योगियों की परम्परा में **शक्तिपात** करना कहते हैं।

इस प्राणशक्ति, चेतनाशक्ति, जीवनशक्ति अथवा कुण्डलिनी आदि नामों से स्मरण की जाने वाली शक्ति को उद्बुद्ध करने के अनेक मार्ग हैं, अनेक उपाय हैं, अनेक साधनाएँ हैं। साधना के क्रम में हम या कोई साधक या सिद्ध इतना ही कह सकता है कि यह मार्ग अमुक स्थान तक अवश्य जाता है, क्योंकि उस मार्ग को अथवा उसके चित्र को (यथार्थ चित्र को) उसने देखा है या समझा है। किन्तु जिस मार्ग को उसने देखा नहीं, उस पर चला नहीं, अथवा चलना प्रारम्भ करके मार्ग कठिन लगने से, मार्ग समझ में न आने से, उसे छोड़ दिया है उसके सम्बन्ध में यह कहना कि यह मार्ग अमुक स्थान पर नहीं ले जाएगा यदि अनुचित नहीं तो कठिन अवश्य है। अतः अच्छे साधक साधना के अन्य मार्गों के सम्बन्ध में मौन का अवलम्बन करना ही उचित समझते हैं। केवल उस साधना विधि का उपदेश करते हैं, जिस विधि को उन्होंने समझ लिया है। किसी का खण्डन अथवा विरोध वे नहीं करते।

अनन्त चेतना शक्ति के स्रोत को जागृत करने के अनेक उपायों में से किसी भी एक उपाय का ही आश्रयण साधक को करना चाहिए। हां प्राथमिक तैयारी के लिए, साधना की पृष्ठभूमि तैयार करने के

---

१. अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्न-उदाराणाम्।

—योगसूत्र २।३-४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए, साधना की योग्यता प्राप्त करने के लिए एक साथ एक से अधिक उपायों को भी अपनाया जा सकता है। यमों और नियमों का पालन अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का त्याग), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन महाव्रतों का पालन; शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (भक्ति-प्रणति) की समष्टिरूप क्रिया पथ का अनुसरण अवश्य करना चाहिए। आसन, मुद्रा और बन्धों द्वारा—प्राणायाम द्वारा नाड़ीशुद्धि करके भी साधना की योग्यता प्राप्त होती है।

हठयोग के ग्रन्थों में इन साधना की तैयारी के क्रम में स्थूल शरीर की शुद्धि के लिए नेति, धौति, बस्ति, कुञ्जर, शंखप्रक्षालन और त्राटक इन षट्कर्मों की तथा नाड़ी शुद्धि के लिए महामुद्रा, महाबन्ध तथा सूर्यभेद उज्जायी, शीतली, सीत्कारी, भृङ्गी एवं भस्त्रिका प्राणायाम प्रकारों की विधि बताई गयी है, जिनके द्वारा साधक स्थूल शरीर एवं समस्त नाड़ियों की शुद्धि करके केवलकुम्भक अथवा कुण्डलिनी साधना में प्रवृत्त होता है। इस केवलकुम्भक के लिए पहले सहित कुम्भक प्राणायाम किया जाता है। इसके द्वारा भी नाड़ी शुद्धि होती है। जैसे-जैसे प्राण और अपान निकट आने लगते हैं, मणिपूरचक्र अर्थात् नाभि स्थान के पास स्थित अग्नि तीव्र होती है, उसके तीव्र ताप से ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना के मुख (अग्रभाग) पर जमा हुआ कफ आदि अवरोधक मल नष्ट हो जाता है, हट जाता है। अवरोधक मल के पूर्णतया हट जाने पर सुषुम्ना का मुख स्वतः खुल जाता है, तीव्र अग्नि का ताप इस कार्य को सम्पन्न करता है। सुषुम्ना का मुख खुल जाने पर कन्द से जुड़ा हुआ सुषुम्ना का निम्नतम भाग, जिसे हमने सुषुम्ना का चतुर्थ भाग कहा है, इस शुद्ध हुए सुषुम्ना-मुख से, जो मूलाधार चक्र के पास है, जुड़ जाता है और उसमें स्थित प्राणशक्ति, जिसे कुण्डलिनी या जीवशक्ति भी कहते हैं, मूल चेतना केन्द्र से जुड़ जाती है। अर्थात् कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। इस साधना क्रम में शरीर और स्थूल नाड़ी की शुद्धि पहले होती है, अतः शरीर में विद्यमान प्रत्येक प्रकार के रोगों की निवृत्ति सर्वप्रथम होती है। जिसके फलस्वरूप व्याधि और स्त्यानरूपविघ्नों की निवृत्ति होती है। इसके बाद क्रमशः स्थूल एवं सूक्ष्म नाड़ियों की शुद्धि होने पर संशय, प्रमाद आदि विघ्न भी दूर होते हैं और साधक की साधना निर्विघ्न रूप से आगे बढ़ने लगती है।

चक्र-साधना : कुण्डलिनी जागरण

योग साधना के क्रम में कुण्डलिनी जागरण का अत्यधिक महत्व है। इसके लिए प्राचीनकाल से योग साधना की परम्परा में चक्रों का ध्यान और उनमें चित्तलय की विशेष महिमा स्वीकार की जाती है। ये चक्र वस्तुतः क्या हैं ? अथवा शरीर में इन चक्रों की वास्तविक सत्ता है या नहीं ? इस विषय पर कुछ आचार्यों एवं शरीर रचना विज्ञानियों में मतभेद है। उदाहरणार्थ, आर्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती, जो स्वयं एक बहुत बड़े योगी भी थे, चक्रों की सत्ता को ही अस्वीकार करते हैं। कहा जाता है कि उन्होंने नदी में बहते हुए एक मुर्दे को पकड़कर शल्य क्रिया करके चक्रों की स्थिति को देखना चाहा, किन्तु उन्हें इसमें निराशा ही हाथ लगी। शरीर विज्ञान के आचार्य भी योग परम्परा में वर्णित चक्रों की सत्ता और उनके स्वरूप विवरण को भी स्वीकार नहीं करते तथापि साधक परम्परा में इनकी सत्ता को—इनके विशिष्ट स्वरूपों को स्वीकार करते हुए इनके ध्यान की तथा इनमें चित्तलय की बड़ी महिमा स्वीकार की गयी है।

वस्तुतः ये चक्र मेरुदण्ड के अन्तर्गत मूलाधार से सहस्रार तक, दूसरे शब्दों में मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग से आरम्भ होकर उसके उच्चतम भाग से भी ऊपर मस्तिष्क तक सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति

www.jainelibrary.org

योगियों की परम्परा और चिकित्सा शास्त्र दोनों में स्वीकार की जाती है। यह सुषुम्ना नाड़ी चेतना का केन्द्र है, जहाँ मस्तिष्क अनन्त ज्ञानकोषों के गुच्छक के रूप में स्वीकार किया जाता है, वहीं अनेकानेक चेतना केन्द्रों को भी सुषुम्ना नाड़ी में (मेरुदण्ड के मध्यभाग में) चिकित्सा विज्ञान स्वीकार करता है। इस स्थिति में इन चक्रों को चेतना के विविध केन्द्रों के रूप में स्वीकार करने पर चिकित्सा विज्ञान और योग परम्परा के बीच किसी प्रकार का मतभेद नहीं रह जाता। अतः यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि चिकित्सा विज्ञानियों द्वारा मेरुदण्ड के मध्यवर्ती सुषुम्ना नाड़ी में स्वीकृत चेतना के केन्द्र ही योगि-परम्परा में स्वीकृत चक्र हैं। ये चेतना के केन्द्र अनेकानेक ऊतकों से युक्त हैं, निम्न भाग में स्थित केन्द्रों की अपेक्षा उच्च, उच्चतर और उच्चतम भागों में स्थित केन्द्र अधिकाधिक शक्तिशाली हैं। उनकी ग्रहण क्षमता एवं प्रेरक क्षमता उत्तरोत्तर अधिक है और सूक्ष्म केन्द्रों के स्वरूप और शक्ति को योगि-परम्परा में विविध प्रतीकों के माध्यम से वर्णित किया गया है। अतः इन चक्रों के दल (पत्ते) और उन पर स्वीकार किये जाने वाले बीजाक्षरों को ग्रहण और प्रेरक शक्ति की सूचना देने वाले प्रतीकों के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए। स्मरणीय है कि योग की एक शाखा तन्त्र में पृथिवी आदि तत्त्वों के प्रतीक के रूप में एक-एक अक्षर बीजाक्षर के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसका विस्तृत विवरण तन्त्र शास्त्र में ही द्रष्टव्य है।

योगि-परम्परा में यद्यपि चक्रों की संख्या के सम्बन्ध में कुछ मतभेद भी है तथापि निम्नलिखित चक्रों को उनके स्वरूप विवरण के साथ निर्विवादरूप से स्वीकार किया जाता है। ये चक्र हैं— (१) मूलाधार चक्र, (२) स्वाधिष्ठान चक्र, (३) मणिपूर चक्र, (४) अनाहत चक्र या हृदय चक्र, (५) विशुद्ध चक्र या कण्ठ चक्र, (६) आज्ञा चक्र या भ्रू चक्र, (७) सहस्रार चक्र या सहस्र दल कमल। इन सात चक्रों में सामान्यतः प्रथम छह को अर्थात् मूलाधार से आज्ञा चक्र तक को 'चक्र' नामों से तथा अन्तिम सहस्रार को परमपद शिवस्थान आदि नामों से तन्त्र परम्परा में स्वीकार करते हैं, अर्थात् अन्तिम सहस्रार चक्र को चक्र न कहकर सहस्रदल कमल और शिवस्थान आदि नामों से अभिहित करते हैं। इनका विशिष्ट विवरण षट् चक्र निरूपण ग्रन्थ में द्रष्टव्य है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे अंकित है जिन पर ध्यान करने से जागृत कुण्डलिनी क्रमशः ऊपर उठती है। उसके ऊर्ध्वगामी होने के साथ-साथ ये चक्र जागृत हो जाते हैं अर्थात् ये विशिष्ट चेतना केन्द्र सम्पूर्ण रूप से क्रियाशील हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप साधक को अद्भुत चेतना शक्ति प्राप्त हो जाती है।

मूलाधार चक्र

जैसा कि इस चक्र के नाम से भी स्पष्ट है मूलाधार चक्र समस्त चक्रों के मूल आधार में है। मूल आधार से तात्पर्य है जहाँ से सुषुम्ना नाड़ी का प्रारम्भ होता है अर्थात् योनि स्थान के निकट। यह स्थान गुदा (मल निकलने का मार्ग) से थोड़ा ऊपर लिङ्ग के पीछे है। इस चक्र को आधार चक्र अथवा आधार कमल भी कहते हैं। यह पृथिवी का स्थान अर्थात् शरीर में स्थित भूलोक स्वीकार किया जाता है। प्राणायाम मन्त्र में प्रथम अंश 'ओम् भूः' का जप और अर्थ की भावना इस चक्र (इस चेतना केन्द्र) को जागृत करने, इसको अपनी समग्र शक्तियों के साथ क्रियाशील करने के लिए ही की जाती है। इस चक्र में चार दल अर्थात् पंखुड़ियाँ मानी जाती हैं, जिनका वर्ण रक्त अर्थात् जपा (गुड़हल) के पुष्प के रंग के सदृश है और प्रत्येक दल पर क्रमशः वँ शँ षँ सँ बीज मन्त्र अंकित है, ऐसा स्वीकार किया जाता है। बीज मन्त्रों द्वारा इस विशिष्ट चेतना केन्द्र (मूलाधार चक्र) की विशिष्ट ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति की ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत किया गया है, जिनकी व्याख्या के लिए स्वतन्त्र लेख की अपेक्षा होगी। चारों दलों के मिलन स्थल चक्र के मध्य स्थान (कर्णिका) में पृथिवी शक्ति का बोधक लँ बीज मन्त्र अवस्थित है। इसका तात्पर्य यह है कि इस चक्र के मूल में धारणा पृथिवी धारणा है, जिसके सिद्ध होने पर साधक को पृथिवी अथवा पार्थिव पदार्थों से कोई बाधा नहीं होती। पार्थिव पदार्थ उसकी गति में बाधक नहीं बनते, पृथिवी से उसे चोट आदि की आशंका नहीं रहती, पृथिवी उसकी मृत्यु का कारण नहीं बन सकती। गन्ध इसका गुण है। फलतः दिव्य गन्ध संवित् भी उसे सिद्ध हो जाती है अर्थात् उसे और उसकी इच्छा मात्र से उसके परिवेश में दिव्यगन्ध का आनन्दपूर्ण अनुभव सर्व साधारण को भी हो सकता है।

इस चक्र के लँ बीज का वाहन ऐरावत हाथी माना गया है। ब्रह्मा इस चक्र का देवता है तथा डाकिनी इसकी देव शक्ति मानी जाती है। इसमें ध्यान हेतु केन्द्र के रूप में चतुष्कोणाकृति यन्त्र की जाती है। इस चक्र का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय घ्राण (नासिका) और कर्मेन्द्रिय गुदा से स्वीकार किया जाता है अर्थात् ये दोनों इन्द्रियाँ इस चक्र की साधना के फलस्वरूप अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कार्य करने लगती हैं, दिव्य गन्ध संवित् जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है, घ्राण इन्द्रिय की पूर्ण क्रियाशीलता का ही फल है। भौतिक शरीर की निर्मलता गुदा इन्द्रिय की पूर्ण क्रियाशीलता का परिणाम होता है। इसके अतिरिक्त साधक को मानव मात्र से श्रेष्ठता, अद्भुत वक्तृत्व शक्ति, समस्त विद्याओं और कवित्वशक्ति की प्राप्ति भी मूलाधार चक्र के जागृत होने के फलस्वरूप होती है। शरीर के पूर्ण निर्मल होने के फलस्वरूप पूर्ण आरोग्य और चित्त में आनन्द की अनुभूति भी साधक को निरन्तर प्राप्त होती है। स्मरणीय है कि योग परम्परा में इस चक्र के जागरण को ही ब्रह्मग्रन्थि-भेदन भी कहते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति योनि स्थान से कुछ ऊपर और नाभिस्थान के नीचे पेडू के पीछे अर्थात् मूलाधार और मणिपूर चक्र के मध्य में स्वीकार की जाती है। यह स्थान जल का स्थान माना जाता है। शरीर में भुवः लोक की स्थिति यहीं स्वीकार की गयी है। प्राणायाम मन्त्र के द्वितीय अंश 'ओम् भुवः' का जप और अर्थ की भावना इस चक्र को जागृत करने के लिए ही की जाती है। इसके जागृत होने से इस चेतना केन्द्र के सभी ऊतक पूर्ण क्रियाशील हो जाते हैं। इस चक्र (चेतना केन्द्र) को षट्कोण (छह कोणों वाली आकृति का) और सिन्दूर वर्ण वाला माना गया है। इसके प्रत्येक दल (पंखुड़ी) पर क्रमशः बँ भँ मँ यँ रँ और लँ बीज मन्त्र अंकित हैं, यह स्वीकार किया जाता है। ये सभी बीज इस चेतना केन्द्र (चक्र) की विविध किन्तु प्रमुख ज्ञान और क्रिया शक्ति के प्रतीक है। कर्णिका (चक्र के केन्द्र स्थल) में वँ बीज माना जाता है। वँ बीज जल तत्त्व का बीज है। इसलिए चक्र में धारणा को ही जल धारणा भी कहते हैं। इसके (जल धारणा के) सिद्ध होने पर साधक को जल से किसी प्रकार की बाधा नहीं हो पाती, न तो जल की शीतता साधक को कष्टकर होती है, न जल उसे गीला कर सकता है और न गला-सड़ा सकता है, न उसे उसमें डूबने से ही कोई हानि की सम्भावना रहती है, जल उसकी मृत्यु का भी कारण नहीं बन सकता। रस जल का प्रधान गुण है अतः जलधारणा सिद्ध होने पर अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र के जागृत होने पर साधक को दिव्य रस संवित् भी सिद्ध हो जाता है, अर्थात् उसकी इच्छा मात्र से उसे दिव्य रसों के आस्वाद के आनन्द का अनुभव होता है। उसकी कृपा से सर्वसाधारण भी दिव्य रसों के आस्वाद का अनुभव कर सकते हैं।

इस चक्र का तत्त्व बीज वँ है, जल तत्त्व का वाहन मकर स्वीकार किया गया है। विष्णु इस

www.jainelibrary.org

चक्र का देवता है और डाकिनी उसकी शक्ति का नाम है। इस चक्र के अन्दर यन्त्र की कल्पना चन्द्राकार रूप में की गयी है। इसका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय रसना और कर्मेन्द्रिय लिङ्ग (उपस्थ) से माना जाता है। अर्थात् इस चक्र की साधना के फलस्वरूप उपर्युक्त दोनों इन्द्रियाँ (रसना और उपस्थ) अपनी सम्पूर्ण शक्ति को प्राप्त कर लेती हैं। दिव्य रस संवित् तो रसना की पूर्ण क्रियाशीलता का ही परिणाम है, जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। उपस्थ की पूर्ण शक्ति सम्पन्नता के फलस्वरूप साधक ऊर्ध्वरेता हो जाता है।

इसके अतिरिक्त स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण का फल अहंकार आदि विकारों की पूर्ण निवृत्ति, मोह का नाश तथा अपूर्व कवित्व शक्ति की प्राप्ति भी है, जिसके फलस्वरूप साधक इच्छानुसार किसी भी भाषा में गद्य-पद्य रचना में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार उसे अनेक साधक योगियों के मध्य स्वतः श्रेष्ठता प्राप्त हो जाती है। अहंकार और मोह आदि संकीर्ण मनोभावों की पूर्ण निवृत्ति के कारण वह मन के समस्त विकारों से रहित होकर पूर्ण सन्तृप्ति का अनुभव करता है।

मणिपूर चक्र

मणिपूर चक्र की स्थिति नाभि के निकट मेरुदण्ड में है। सूत्र में जिस प्रकार मणियां गुँथी होती हैं, उसी प्रकार समस्त नाड़ी चक्र इस पर गुम्फित रहता है, इसीलिए इस चक्र को मणिपूर नाम दिया गया है। यह स्थान अग्नि का स्थान माना जाता है। शरीर में स्वर्लोक की स्थिति भी यहीं मानी गयी है। इसीलिए प्राणायाम मन्त्र के एक अंश 'ओम् स्वः' का जप और उसके अर्थ की भावना इस चक्र को जागृत करने के लिए की जाती है। इस चक्र के जागृत होने पर इस चेतना केन्द्र के सभी ऊतक पूर्ण क्रियाशील हो जाते हैं। इन चेतना केन्द्रों (चक्र) में पूर्व चक्रों की अपेक्षा उत्तरोत्तर ऊतकों के गुच्छक अधिक हैं। फलतः उत्तरोत्तर चक्रों के दलों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी है। इस चक्र में दस दल माने जाते हैं, जिनका वर्ण नीला स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक दल में क्रमशः डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बीजमन्त्र माने गये हैं। अग्नि इस चक्र का प्रधान तत्त्व है, अतः अग्नि का बीजमन्त्र रँ चक्र के मध्य (कर्णिका) में माना जाता है। इस अग्नि तत्त्व का वाहन मेष और इस स्थान का देवता वृद्ध रुद्र स्वीकार किया जाता है, लाकिनी उसकी विशेष शक्ति का नाम है। प्रत्येक दल में स्वीकृत बीजमन्त्र इस चक्र अर्थात् ज्ञान और क्रिया के मूल चेतना केन्द्र के अंश विशेष के प्रतीक हैं। इस चक्र के यन्त्र की आकृति त्रिकोण है। रूप इस चक्र (चेतना केन्द्र) का विशेष गुण है। ज्ञानेन्द्रिय नेत्र एवं कर्मेन्द्रिय चरणों से इस चक्र का विशेष सम्बन्ध है। फलतः इस चक्र के जागृत हो जाने से साधक को दिव्य रूप संवित् की सिद्धि हो जाती अर्थात् साधक अपनी इच्छानुसार स्वयं विविध दिव्य रूपों का साक्षात्कार करने लगता है और उसकी कृपा से अन्य जन भी अद्भुत रूपों का साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाते हैं। साथ ही इन दोनों इन्द्रियों (नेत्र एवं चरण) के अतिशय शक्ति सम्पन्न हो जाने के कारण साधक को दूरदृष्टि एवं दूरगमन का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मणिपुर चक्र अग्नि तत्त्व का स्थान है, अतः इस चक्र के जागृत होने से उसे आग्नेय धारणा की सिद्धि हो जाती है फलतः साधक को अग्नि तत्त्व पर विजय प्राप्त हो जाती है, वह अग्निकुण्ड में स्थित होकर भी जलता नहीं बल्कि स्वयं भी अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है। इसके अतिरिक्त साधना ग्रन्थों में इस चक्र के जागृत होने पर साधक वचन रचना चातुर्य प्राप्त कर लेता है और उसकी जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती निवास करने लगती है ऐसा स्वीकार किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चक्र के जागृत होने का मुख्य परिणाम यह है कि साधक योगी को सृष्टि की रचना, उसका पालन और उसके संहार का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाता है।

अनाहत चक्र

अनाहत चक्र की स्थिति हृदय के निकट मानी जाती है। यह स्थान मणिपूर और विशुद्ध चक्र के मध्य में स्थित है। यह स्थान वायु तत्त्व का केन्द्र है ऐसा स्वीकार किया जाता है। शरीर में महः लोक की स्थिति भी यहीं है। इस तत्त्व का प्रधान गुण स्पर्श है। त्वचा और हाथ इस चक्र से सम्बन्धित क्रमशः ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय हैं। प्राणायाम मन्त्र में 'ओम् महः' अंश का अर्थ और उसकी भावना के साथ जप करते हुए प्राणायाम की साधना इस चक्र को जागृत करने के लिए की जाती है। वायवी धारणा भी इस स्थान पर सम्पन्न होती है। यहाँ धारणा करने से ही साधक को अनाहत नाद की अनुभूति होती है, इसलिए इस स्थान पर स्थित चक्र (चेतना केन्द्र) को अनाहत चक्र कहा जाता है। विष्णुग्रन्थि भी यहीं है, जिसका भेदन इस चक्र के जागरण द्वारा होता है।

अनाहत चक्र में बारह दल (पँखुड़ियाँ) स्वीकार किये गये हैं जिनमें एकैकशः कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ और ठँ बीजाक्षर स्वीकार किये जाते हैं। इन बारह दलों के मध्य कर्णिका में वायु तत्त्व का बीज मन्त्र यँ अंकित किया जाता है। इस चक्र का वर्ण अरुण (उगते हुए सूर्य का रंग) माना गया है। बीज का वाहन मृग है। इस चक्र (चेतना केन्द्र) का देवता ईशान रुद्र तथा काकिनी उसकी शक्ति मानी जाती है। इसके यन्त्र का स्वरूप षट्कोण बनाया जाता है।

योग के प्राचीन ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया है कि इस चक्र में प्राण और मन को पहुँचा देने से वायवी धारणा की सिद्धि योगी को मिल जाती है, जिसके फलस्वरूप समस्त वायु तत्त्व योगी के वश में हो जाता है। वायु का आघात अथवा वायु की न्यूनता का कोई प्रभाव योगी पर नहीं पड़ता। वायु तत्त्व पर विजय के कारण ही प्राणवायु उसके वश में इस प्रकार हो जाता है कि वह अपनी इच्छानुसार अपने शरीर से प्राणों को निकाल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करने में समर्थ हो जाता है, अथवा प्राणों का विस्तार करके सौभरि की तरह निर्माण चित्तों का निर्माण करके अनेक शरीरों को धारण कर सकता है। ईशित्व और वशित्व सिद्धियाँ भी उसे प्राप्त हो जाती हैं। समस्त ज्ञान और काव्य रचना का चातुर्य भी उसे अनायास प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनाहत नाद की अनुभूति से समाधि की सिद्धि भी योगी को हो जाती है।

विशुद्ध चक्र

विशुद्ध चक्र का स्थान कण्ठकूप है। अनाहत और आज्ञा चक्र के मध्य यह स्थान है। कण्ठकूप को आकाशतत्त्व का केन्द्र माना जाता है। शरीर में जनः लोक की प्रतिष्ठा यहीं स्वीकार की जाती है। आकाश तत्त्व का प्रधान गुण 'शब्द' की उत्पत्ति स्थान भी कण्ठ ही है। श्रोत्र ज्ञानेन्द्रिय एवं वाक् कर्मेन्द्रिय का सम्बन्ध इस आकाश तत्त्व से है। इस तत्त्व को, चेतना के शक्तिशाली इस केन्द्र विशुद्ध चक्र को जागृत करने के लिए ही प्राणायाम मन्त्र के 'ओम् जनः' इस अंश का अर्थ भावनापूर्वक जप किया जाता है। आकाश धारणा की साधना भी यहीं सम्पन्न की जाती है। इस आकाश धारणा के सिद्ध होने पर दूर से दूर स्थान में अथवा पूर्व से पूर्व काल में उत्पन्न शब्दों को योगी सुन सकता है और आकाश की अनन्त सीमा के अन्दर वह स्वच्छन्द विचरण कर लेता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चक्र में सोलह दल हैं, यह संख्या अब तक वर्णित चक्रों के दलों की संख्या से सर्वाधिक है। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व वर्णित चक्रों की अपेक्षा यह सबसे बड़ा चेतना केन्द्र है। इस चक्र के सोलह दलों में क्रमशः अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अं अँः बीजाक्षर अंकित किये जाते हैं तथा कर्णिका में आकाशतत्त्व का बीज हँ माना जाता है। आकाशतत्त्व का अधिष्ठान होने से इसके यन्त्र की रचना शून्य चक्र के रूप में की जाती है। इस चक्र के दलों का रंग धूम्रवर्ण माना गया है। इस चक्र के बीज का वाहन हाथी माना जाता है। पञ्च वक्त्र रुद्र इस चक्र का देवता है तथा शाकिनी उसकी शक्ति है।

इस चक्र के जागरण से साधक की अनन्त मूलशक्तियाँ जागृत हो जाती हैं, स्वरों को बीजमन्त्र स्वीकार करते हुए इसी रहस्य की ओर संकेत किया गया है। जिस प्रकार स्वर वर्ण अन्य सभी बीजमन्त्रों के मूल में अवश्य विद्यमान रहते हैं, आकाश सभी तत्त्वों के अन्तर्गत व्यापक रहता है उसी प्रकार सभी प्रकार की शक्तियों और चेतनाओं के मूल में भी इस चक्र की शक्तियाँ केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित रहती हैं। काव्य-रचना अथवा वचन रचना चातुर्य, जिसकी चर्चा अन्य चक्रों के जागरण के क्रम में की गयी है, उसका मूल भी आकाश तत्त्व का विशेष क्रियाशील होना है। आकाश धारणा के सिद्ध होने पर अर्थात् इस चक्र के जागृत होने पर योगी का चित्त आकाश के समान ही पूर्ण शान्त, भावनाओं की विविध तरङ्गों के विकारों से रहित पूर्ण शान्त हो जाता है, जहाँ तक आकाश की व्यापकता है, वहाँ तक योगी की ज्ञानसीमा विस्तृत हो जाती है अर्थात् साधक सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है। सर्वलोकोपकारिता योगी का स्वभाव हो जाता है। पूर्ण आरोग्य, इच्छानुसार जीवन और परम तेजस्विता उसके सहज धर्म बन जाते हैं।

आज्ञा चक्र

आज्ञा चक्र की स्थिति विशुद्ध और सहस्रार चक्रों के मध्य दोनों भौहों (भ्रू) के बीच में स्वीकार की जाती है। यह स्थान महत्तत्त्व का केन्द्र है। महत्तत्त्व प्रकृति का साक्षात् विकार है। शेष सभी तत्त्व अहंकार, पाँच तन्मात्राएँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, उभयेन्द्रिय मन, और पाँच महाभूत सभी इसके ही विकार हैं। इनमें अहंकार साक्षात् विकार है तथा अहंकार के विकार तन्मात्राएँ और सभी इन्द्रियाँ हैं, पाँचों महाभूत पाँच तन्मात्राओं के विकार हैं। इस प्रकार महत् भी इन सभी की प्रकृति है, मूल तत्त्व है। आचार्य कपिल ने मन को महत्तत्त्व से अभिन्न माना है [महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः, सांख्यसूत्र १. ७१] इसका तात्पर्य है कि महत्तत्त्व का मन से अभिन्न सम्बन्ध है, फलतः इस चक्र के जागरण के लिए महत्तत्त्व पर धारणा करनी चाहिए। इस चक्र पर धारणा करने से साधक का मन पूर्ण शक्ति सम्पन्न हो जाता है। मन उभय इन्द्रिय है अर्थात् पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और पाँचों कर्मेन्द्रियों का अधिष्ठाता है। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का सम्पूर्ण नियमन मन के द्वारा ही होता है। यह एक ऐसा चेतना केन्द्र है जहाँ से समस्त ज्ञान चेतना एवं क्रियात्मक चेतना का समग्ररूप से संचालन होता है। इसी कारण इस चक्र (चेतना केन्द्र) में केवल दो ही दल माने गये हैं। ये दो दल (पंखुड़ियाँ) एक-एक करके ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की चेतना के प्रतीक हैं।

प्राणायाम मन्त्र के 'ओम् तपः' अंश का अर्थ और उसकी भावना के साथ जप इस चक्र को (चेतना केन्द्र को) जागृत करने के लिए किया जाता है। इसके जागृत होने से सम्पूर्ण ज्ञानशक्ति और सम्पूर्ण क्रिया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्ति जागृत हो जाती है। फलस्वरूप साधक योगी सर्वज्ञ हो जाता, उसके लिए कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता। इसी प्रकार उसकी क्रिया शक्ति भी सम्पूर्ण रूप से जागृत हो जाती है। फलतः वह सर्वशक्तिमान् हो जाता है। दोनों प्रकार की शक्तियों की दृष्टि से वह परमेश्वर के लगभग सदृश हो जाता है क्योंकि इस चक्र का तत्त्व महत्त् है और वही समस्त विश्व के तत्त्वों का मूल है, अतः उसकी धारणा से सम्पूर्ण प्रकृति उसके वश में हो जाती है। इस प्रकार इस चक्र के जागरण द्वारा अनन्त शक्ति सम्पन्न हो जाने पर साधक की रुद्रग्रन्थि का भेदन हो जाता है, जिसके बाद उसकी प्राणशक्ति (कुण्डलिनी) और मन सहस्रार चक्र में पहुँच जाते हैं। इस स्थिति को परम पद कहते हैं।

आज्ञा चक्र में दो दल हैं, इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इन दोनों दलों में हँ एवं क्षँ बीजाक्षर माने जाते हैं जो क्रमशः ज्ञानशक्ति और इच्छा शक्ति के प्रतीक हैं। ॐ महत्तत्त्व का बीजाक्षर है जिसे कर्णिका में अंकित मानना चाहिए। ज्योतिर्लिंग के रूप में इसके यन्त्र की कल्पना की जाती है। अर्थात् इस चक्र के जागरण हेतु आज्ञा चक्र में ज्योतिर्लिंग के स्वरूप में साधक ध्यान करता है। इसके बीज का वाहन नाद है जिसे दर्शन शास्त्र में शब्द ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है।

इससे पूर्व के चक्रों में क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वों में धारणा की गयी थी। अर्थात् क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम तत्त्वों पर प्राणशक्ति और मन को स्थिर करने का (धारणा करने का) अभ्यास किया गया था। भूतों में सूक्ष्मतम आकाश है, शब्द ही उसका गुण है, उसमें धारणा सिद्ध हो जाने पर मन और प्राण स्थिर हो गये हैं ऐसा कहा जा सकता है। अतः इस चक्र में धारणा का नहीं ध्यान का अभ्यास किया जाता है, जो धारणा से उच्चतर स्थिति है। इस महत्तत्त्व में ध्यान की सिद्धि होने पर अर्थात् विश्व के मूल तत्त्व (सूक्ष्मतत्त्व) में चित्त की एकतानता (तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्—यो सू० ३·२) अर्थात् ध्यान के सिद्ध होने पर रुद्रग्रन्थि का भेदन हो जाता है और प्राण तथा मन सुषुम्ना महापथ के सर्वोच्च स्थान पर पहुँच जाते हैं, जिसे सहस्रार चक्र, सहस्र दल कमल और परम पद कहते हैं। यह स्थल समग्र चेतना का मूल है, अतः इस स्थान में कोई तरंग नहीं है, निस्तरंग प्रशान्त अगाध समुद्र की भांति यहाँ परम शान्ति है। इस स्थिति में पहुँचने पर साधक को कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती, वह उसकी समाधि की स्थिति होती है। तात्पर्य यह है कि आज्ञा चक्र के जागृत होते ही साधक समाधि की स्थिति में पहुँच जाता है। इस स्थिति में पहुँच कर उसे कुछ करने की अपेक्षा नहीं होती। आवश्यकता होती है तल्लीनता की जिससे विक्षेप उसे न खींच सकें। यहीं योगी परम आनन्द के अनुभव में मग्न हो जाता है, लीन हो जाता है, दूसरे शब्दों में ब्रह्म की अभेदावस्था को प्राप्त कर लेता है, ब्रह्ममय हो जाता है।

स्मरणीय है कि चक्रों की संख्या बताते हुए और उनके नामों का परिगणन करते समय सात चक्रों के नाम लिए जाते हैं—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूर, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध, (६) आज्ञाचक्र और (७) सहस्रारचक्र। किन्तु साधना के क्रम में केवल छह चक्रों की साधना की विधि का वर्णन होता है। इसका कारण यह है कि आज्ञाचक्र के जागृत होने के बाद योगी को साधना की आवश्यकता नहीं रह जाती, अब वह साधक नहीं रहता सिद्ध हो जाता है, सिद्ध ही नहीं परम सिद्ध। उसे न किसी साधना की अपेक्षा रहती है और न विश्व के किसी भौतिक अभौतिक स्थूल अथवा सूक्ष्म पदार्थ की अपेक्षा रहती है। वह ब्रह्म से अद्वैतभाव को प्राप्त हो जाता है। यही स्थिति समस्त साधनाओं से प्राप्त होने वाली अन्तिम स्थिति है। परम सिद्ध अवस्था है। इसे ही बौद्ध परम्परा में ब्रह्मविहार शब्द से साधना की सर्वोच्च सिद्धि के रूप में स्मरण किया गया है। ☐ ☐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org